अनुवादक शमशेर

हम राख हैं जो आईने के मुँह पर मले हुए हैं
क्या उसे माँजने के लिए ?

हिन्दी में शमशेर एक कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं लेकिन उन्होंने अनुवाद अधिकांशत:गद्य में किए ---पाँच उपन्यास (कामिनी, हुश्शू, पी कहाँ:1948,पृथ्वी और आकाश:1944 तथा आश्चर्य लोक में एलिस:1961),एक कहानी-संग्रह (संसार की प्रसिद्ध कहानियाँ:1938),एक साहित्येतिहास की पुस्तक(उर्दू साहित्य का संक्षिप्त इतिहास:1955),एवं एक कथेतर गद्य की पुस्तक (षडयंत्र:1946); कविताओं का अनुवाद उन्होंने छिटपुट ही किये ---- फ्रांसीसी कवि लुई अरागाँ की कुछ कविताएँ, कुछ जापानी हायकू, भुवनेश्वर की कुछ कविताएँ और कुछ अपनी कविताएँ,बस ।

अनुवाद के लिए रचना के चुनाव के पीछे यूँ तो कई कारण होते हैं जिसमें रचनाकार की अपनी पसन्दगी और नापसंदगी भी एक कारण होता है या हो सकता है लेकिन शमशेर के स्रोत-- रचना के चुनाव के पीछे दो स्पष्ट कारण दिखाई पड़ते हैं --- एक वैचारिक आग्रह और दूसरा व्यावसायिक बाध्यताएँ।वैचारिक प्रतिबद्धता के कारण ही **षडयंत्र** और **पृथ्वी और आकाश** का अनुवाद हुआ होगा । पृथ्वी और आकाश का अनुवाद शमशेर ने बनारस में सन 1943 में किया। वह दौर शीत युद्ध का था और स्तालिन के रूस में बहुप्रशंसित पोलिस लेखिका वान्दा वैसिल्युस्का (1905-1964)की द्वितीय विश्व-युद्ध में लाल सेना की वीरता पर लिखा उपन्यास **तेच्चा** (1942)का दो वर्ष के भीतर शमशेर द्वारा अनूदित किया जाना,उनके वैचारिक आग्रह को दर्शाता है।यहाँ यह भी उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि इस लेखिका को स्तालिन पुरुस्कार तीन बार 1943, 46 और 52 को प्रदान किया गया

और पूरे सोवियत संघ में उनकी पुस्तकें स्कूलों में नियत थीं (और इस तथ्य का तत्कालीन भारतीय वामपंथी बुद्धिजीवियों पर काफी दबदबा था) लेकिन स्तालिन की मृत्यु के बाद उन्हें पूरी तरह से भूला दिया गया। इसी प्रकार आयरिश कवि एवं नाटककार मायकेल सेयर (1911-2010) तथा लन्दन में जन्मे अमरीकी यहूदी एल्बर्ट यूगीन काहन(1912-1979)द्वारा लिखित अंतर्राष्ट्रीय बेस्टसेलर **द ग्रेट कोंसिपायरेसी अगेंस्ट रशिया** को अनुवाद के लिए चुनना,उनके स्पष्ट राजनैतिक आग्रह को संकेतित करता है ।यह वही पुस्तक है जो शीत-युद्ध के दिनों में दक्षिणपंथियों के विरुद्ध वामपंथियों का मुख्य अस्त्र था। इस पुस्तक के आरम्भ में ही लेखक-द्वय की घोषणा थी: इस पुस्तक में जो भी घटनाएँ व संवाद हैं वे लेखक-द्वय द्वारा अविष्कृत नहीं हैं। सामग्री विभिन्न दस्तावेजों से इकट्ठा की गई है जिसे पाठ में चिह्नित कर दिया गया है या सन्दर्भ एवं टिप्पणी में बता दिया गया है ।[1] क्रांतिकारी रूस के खिलाफ बुर्जुआ योरप के षडयंत्र को इस पुस्तक में उसी प्रकार पर्दाफास किया गया था जिस प्रकार **तेच्चा** में लाल सेना की वीरता के समक्ष जर्मन बर्बरता को अतिरंजित रूप में उजागर किया गया था।

शमशेर के अधिकतर अनुवाद कथा-साहित्य के अनुवाद हैं जिसकी ओर सम्भवत: वे आर्थिक मजबूरियों की वजह से उन्मुख हुए होंगे ।मलयज अपनी डायरी में 1-1-78 को लिखते हैं: " पंत जी की मदद से सन् 38 में इंडियन प्रेस में अनुवाद का काम मिला ।शमशेर की पढ़ाई-फीस का प्रबन्ध तब बच्चन कर देते थे,पंत जी द्वारा दिलाए अनुवाद के काम से शमशेर का और खर्च चलता था।शमशेर ने अमरीकी तथा अन्य कहानियों का मेहनत से अनुवाद किया जो विश्व की सर्वश्रेष्ठ कहानियों के एक संग्रह के रूप में इंडियन प्रेस से ही छपा।इंडियन प्रेस में जो इस काम के इंचार्ज थे उनसे शमशेर समय-समय पर पैसे लेते रहते थे।एक दफा हिसाब होने पर इंचार्ज ने बताया कि आपको पैसे ज्यादा दे दिये गये । तब रहस्य खुला कि वे चार आना प्रति पृष्ठ अनुवाद का लगा रहे थे।जबकि शमशेर प्रचलित रेट के हिसाब से आठ आना प्रति पृष्ठ समझ रहे थे ।तब वे बोले कि छ: आना तो हम निराला जी को देते हैं । शमशेर इस जवाब को सुन चुप रह गए थे।"[2] शमशेर ने इंडियन प्रेस

के लिए ही **संसार की प्रसिद्ध कहानियाँ** अनूदित की थी और यह अनुवाद की ही नहीं बल्कि किसी भी विधा में उनकी यह पहली प्रकाशित रचना है ।

शमशेर के अनूदित उपन्यासों में कालक्रम की दृष्टि से वांदा वास्लिवास्का का पृथ्वी और आकाश (1944) पहली रचना है और जिसके चार साल बाद रतननाथ सरशार (1845-1902) की **कामिनी** (1894), **हुश्शू** और **पी कहाँ** का अनुवाद प्रकाशित हुआ। पंडित रतननाथ सरशार की प्रसिद्धि **फ़साना -ए-आजाद** (1880) पर आश्रित है जिसका एक संक्षिप्त अनुवाद हिन्दी में **आजाद-कथा** के नाम से प्रेमचन्द पहले ही कर चुके थे । **कामिनी** की भूमिका में प्रकाशक का कथन है: " आजाद-कथा के प्रणेता,उर्दू साहित्य के अमर रत्न रतननाथ सरशार से हमारे पाठक अपरिचित नहीं हैं ।**आजाद-कथा** उनकी हास्य-कृति थी; **कामिनी** उनकी गम्भीर रचना है ।एक सामाजिक उपन्यास की हैसियत से हम समझते हैं कि आज भी उसका स्थान बहुत उँचा है।...

"कामिनी बहुत बड़ा उपन्यास है और आज के पाठक के लिए,सम्भवत:, वह पुराना विस्तार और शब्द-बाहुल्य बहुत प्रीतिकर न हो ।उपन्यास की हमारी धारणा में भी बहुत अंतर हो गया है ।इस दृष्टि से अनुवाद के समय उस विस्तार का कुछ अनावश्यक अंश हमने निकाल दिया है ।"[3] ठीक यही बात **पी कहाँ** और **हुश्शू** की भूमिका में भी दुहरायी गयी है चाहे आजाद कथा हो या कामिनी आप पायेंगे कि यहाँ उन्ही अंशों को सम्पादित किया गया है जो इन्हें **अंग्रेजी ढ़ंग** के उपन्यास होने से रोकते थे।यह एक सच्चाई है कि हिन्दी और उर्दू में जब उपन्यास का कैनन बन रहा था तब उसकी संरचना को सचेत ढ़ंग से अंग्रेजी ढ़ंग पर ढाला गया ; यह देखने की कोशिश नहीं की गई कि स्वयं फ़साना -ए-आजाद पर सर्वेंतिस के जिस **डान कुइक्ज़ोट** का असर ढूँढा जा रहा था,वह कितना अंग्रेजी ढ़ंग का था।[4] यहाँ यह भी देखने वाली बात है कि स्वयं सरशार ने डान कुइक्ज़ोट का जो अनुवाद **खुदाई फौजदार** (1894) के नाम से किया था,वह कितना मूल के निकट था और कितना अनुवादक की सम्वेदना के।थोमस वेलबोर्न क्लार्क का कहना सही है कि सरशार में दास्तानगोइ और विक्टोरियन आधुनिकता का घुला मिला रूप दिखाई पड़ता है ।[5]कहा जा सकता है कि शमशेर इन अनुवादों में सरशार की **दास्तानगोई** से परहेज करते दिखाई पड़ते हैं ।दास्तानगोई में जो एक प्रकार की लच्छेदार विस्फारित-सी

शैली अपनायी जाती है और शेरो-शायरी जिसका एक अनिवार्य घटक है ; अनुवादक शमशेर इससे भरसक बचने की कोशिश करते हैं -----आश्चर्य नहीं कि इन तीनों ही उपन्यासों में फारसी के अधिकांश शेरों को तो सम्पादित कर ही दिया गया है ,कई उर्दू शेर भी हटा लिए गये हैं ।हुश्शू के आरम्भिक पाँच पृष्ठों में ही करीब सत्रह शेर उद्धृत हैं जिसे अनुवादक ने छाँट कर आठ कर दिया है।[6] अगर **पी कहाँ** का आरम्भिक अंश पढें और उसका मिलान अनुवाद से करें तो कुछ बातें स्पष्ट हो जाती हैं ।मूल का आरम्भ यूँ होता है :

"उधर डाल दी सतखंडे पर कमन्द

इधर पी कहाँ की सदा थी बलन्द

पी कहाँ!पी कहाँ! पी कहाँ!पी कहाँ! मंगल का दिन ! और अन्धेरी रात। बरसात की रात दो बज के सत्ताइस मिनट आये थे तीन का अमल सब आराम में । सोता संसार जागता पाक परवरदिगार । सन्नाटा पड़ा हुआ । अन्धेरा घुप्प छाया हुआ। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। दो चीजों से अलबत्ता अँधेरा ज़रा यों ही-सा कम हो जाता था और वह भी चश्म-ज़दन के लिए ।एक तो कौंदे को लौंकने से बिजली चमकी और ग़ायब । दूसरे जुगनू की रोशनी । नाखून के बराबर कीड़ा मगर दामिनी की दमक से मुकाबला करनेवाला । आसमान पर वह और ज़मीन पर यह कोई मिनकता भी न था ।अगर कोई आवाज़ आती थी तो पत्तों के खड़खड़ाने की हवा के ज़न्नाटे के साथ चलने से दरख़तों के पत्ते गोया तालियाँ बजाते थे तारे सब गायब। फर्श से अर्श तक एक ही किस्म की तारीकी छाई हुई घटाटोप अँधेरा। अगर हवा तेज़ी के साथ न चलती होती तो मूसलाधार मेंह बरसता और आलमगीर बारिश होती।

इसी मंगल के दिन एक जंगल में एक बड़े लक़्क़-व-दक़्क़ महल की छत पर एक आलीशान कमरे में एक लड़का पलंग पर ख़ाबे-नाज में था । बहुत ही खूबसूरत लड़का। सिन कोई सोलह बरस का। अभी मसें भी नहीं भीकती [?] थीं। सर के बाल ता ब: कमर । सियाह जैसे भँवरा।लखनऊ के छोटे गन्धी की दुकान का सोलह रूपये सेर वाला हिना का तेल पड़ा हुआ।पट्टियाँ जमी हुई चोटी गुंधी हुई। प्यारे प्यारे हाथों में मेहंदी रची हुई ।गोरे गोरे पाँव रंगीन । लब मिस्सी मालीदा उन पर रंगे पान। गोया नासिख़ लखनवी ने उन्हीं होटों की सान में यह मशहूर मतला कहा था ।

मिस्सी मालीदा लब पर रंगे-पान है

तमाशा है तहे- आतिश धुआन है

रसीली आँखों में सुर्मे की तहरीर ।" [7]

अब शमशेर का अनुवाद देखें:

"पी कहाँ! पी कहाँ! पी कहाँ !पी कहाँ!□ मंगल का दिन और अन्धेरी रात; बरसात की रात। दो बज के सत्ताइस मिनट आये थे। तीन का अमल। सब आराम में। सोता संसार, जागता पाक परवरदिगार ।सन्नाटा पड़ा हुआ। अन्धेरा घुप्प छाया हुआ। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। दो चीजों से अलबत्ता अँधेरा ज़रा यों ही-सा कम हो जाता था,और वह भी पलक मारने तक को :-- एक तो कौंदे के लौंकने से बिजली चमकी और ग़ायब ;दूसरे जुगनू की रोशनी ।नाखून के बराबर कीड़ा, मगर दामिनी की दमक से मुकाबला करनेवाला । आसमान पर वह और ज़मीन पर यह।कोई मिनकता भी न था ।अगर कोई आवाज़ आती थी तो पत्तों के खड़खड़ाने की।हवा के ज़न्नाटे के साथ चलने से दरख़तों के पत्ते गोया तालियाँ बजाते थे ।तारे सब गायब। जमीन से आसमान तक एक ही तरह का अँधेरा छाया हुआ --- घटाटोप अँधेरा। अगर हवा तेज़ी के साथ न चलती तो मूसलाधार मेंह बरसता और खूब दूर-दूर तक बारिश होती।

इसी मंगल के दिन एक जंगल में एक बड़े लक्क्दक्क महल की छत पर एक आलीशान कमरे में एक नाज़ुक-सा लड़का पड़ा हुआ मीठी नींद ले रहा था ।बहुत ही खूबसूरत लड़का। सिन कोई सोलह बरस का; अभी मसें भी नहीं भीगी थीं ।सर के बाल कमर तक लाम्बे; सियाह जैसे भँवरा। लखनऊ के छोटे गन्धी की दुकान का सोलह रूपये सेर वाला हिना का तेल पड़ा हुआ।पट्टियाँ जमी हुई; चोटी गुँधी हुई। प्यारे- प्यारे हाथों में मेहंदी रची हुई । गोरे गोरे पाँव, रंगीन होंट: मिस्सी के उपर पान का रँग चढा हुआ।रसीली आँखों में सुर्मे की तहरीर ।" [8]

इस अनुवाद में दो बातें ध्यान खीचती हैं ---एक तो मूल से शेर को हटा देने से और विराम चिह्नों को जोड़ देने मात्र से अनुवाद में वर्णन की शैली काफी बदल गई है ; अब यह पुरानी दास्तानगोई के बदले आधुनिक उपन्यास के करीब की शैली जान पड़ती है और दूसरे अरबी-फारसी के मुश्किल अभिव्यंजनाओं का शब्दानुवाद न करके भावानुवाद का सहारा लिया गया है जिससे हिन्दी पाठकों के लिए अनुवाद में प्रवाह की कोई कमी नहीं हो पाई है----- जैसे ***चश्म-ज़दन*** के लिए **पलक मारने (** वैसे पलक झपकने ज्यादा सही होता) **आलमगीर बारिश** के बदले **खूब दूर-दूर तक बारिश, ख़ाबे-नाज** की ज़गह **मीठी नींद ले रहा था** जैसे प्रयोग किये गये हैं ।

शमशेर के अनुवादों में **एलिस इन वंडरलैंड** की चर्चा सबसे ज्यादा हुई । यह अनुवाद कहा जाता है कि शमशेर ने बच्चों को सुनाने के लिए किया था और इसीलिए यह समर्पित भी उन्हीं को है: "नन्ही नीना को/ जो बड़ी रानी बेटी है;/ जिसने अपनी एलिस इन वंडरलैंड/ बहुत-बहुत मेहरबानी करके/ इस पुस्तक को लिखने के लिए दी ।/ और/ रानी बेटी टीना/ रानी बेटी मीना/ रानी बेटी रश्मि/ रानी बेटी उर्मि/ रानी बेटी इन्दो/ और रानी बेटी सरोज/ को/ जिनके अद्भुत क़िस्से-कहानियों/ और खेल-कूद की दुनिया से/ मैं काम की दो-चार बातें सीख सका।---उनका ताऊजी " [9]

□एलिस इन वंडरलैंड□ बाल-साहित्य की पहली किताब है जिसमें उपदेश देने के बजाय फैंटेसी रचने पर जोर है। आश्चर्य नहीं कि इसके अकादमिक अधिग्रहण के बावजूद इसकी माँग लोकप्रिय संस्कृति में'रंगमंच, बैले, आपेरा, फिल्म तथा टेलीविजन में लगातार बढ़ती ही गयी है। यह अंग्रेजी साहित्य के पाठ्य क्रम में भी लगातार पढ़ायी जाती रही है और इसीलिए यह एक साथ ही लोकप्रिय एवं साहित्यिक क्लैसिक है । अकारण नहीं कि बायबिल और शेक्सपियर के बाद यह सर्वाधिक उद्धृत होने वाली रचना है। किसी भी क्लैसिक की तरह इसमें कई स्वर हैं ----यह महज़ एक बाल-कथा नहीं है बल्कि इसमें बहुत कुछ ऐसा है जिसे बच्चे नहीं समझ सकते। कहा तो यहाँ तक जाता है कि यह एक परीकथा न होकर उपन्यास है जिसे तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक विवादों पर व्यंग्य करने के उद्देश्य से एक अन्योक्ति-कथा के रूप में गढ़ा गया है। कुछ आलोचकों ने यह भी ढूँढ निकाला है कि किस वास्तविक व्यक्ति-विशेष के आधार पर आश्चर्य-लोक के किस प्राणी का विद्रूप रचा गया है ; जैसे आक्सफर्ड के डीन के आधार पर चेसायर कैट का, इंग्लैंड की महारानी के आधार पर क्वीन आफ हार्ट का, आक्सफर्ड के तत्कालीन कुलपति के आधार पर व्हाइट रैबिट का तथा रचनाकार का कपड़ा सिलनेवाले किसी दर्ज़ी पर मैड हैटर की परिकल्पना मानी गई है।[10]अब अनुवाद के हवाले से सवाल यह उठता है कि अगर लक्ष्य-भाषा में ये सारे सन्दर्भ अनुपस्थित हैं(जो कि नितांत स्वाभाविक है) तो अन्योक्ति-कथा का अंतरण क्या सम्भव है ? क्या बगैर उस व्यक्ति को जाने, जिस की पैरोडी या कैरिकेचर किया जा रहा है ,हम हँस सकते हैं,या रो सकते हैं? अनुवादक के पास रास्ता क्या है ----क्या वह लक्ष्य-भाषा में एक

समतुल्य सन्दर्भ रचने की कोशिश करे या मूल सन्दर्भ के अंतरण तक ही अपने को सीमित रखे या अन्योक्ति के झमेले में न फँसकर एक सीधी सादी इकहरी,सर्वदेशीय और सर्वकालिक-सी कथा कहने की कोशिश करे। शमशेर ने अपने हिन्दी अनुवाद में यह दूसरा रास्ता अख्तियार किया ।शमशेर इस रचना की सारी अन्योक्तिपरक सन्दर्भों को मिटाकर इसे एक शुद्ध बाल-कथा में तब्दील कर देते हैं ---वे मूल की अन्योक्तिपरक जटिलता को अनुवाद में लाने की कोई कोशिश करते नहीं दिखाई पड़ते। उदाहरण के लिए आप अनुवाद के आरम्भ और अंत को मूल के आरम्भ और अंत से तुलना करें तो कई बातें साफ हो जाती हैं ।मूल का आरम्भ एक कविता से होता है जिसका अंतिम बन्द है :

एलिस ! लो, एक कहानी बचकानी
और, कोमल हाथों से,
रख दो वहाँ बचपन के बुने गये हैं स्वप्न जहाँ
स्मृतियों के मायावी गातों से
जैसे दूरदेश से तोड़ी गई फूलों की हों, मुरझाई मालाएँ
तीर्थयात्री के हाथों से । [11]

और अंत एलिस के स्वप्न को सुनकर उसकी बड़ी बहन के लम्बे अनुचिंतन से होता है : "अंत में, वह कल्पना करती है कि यह उसकी छोटी-सी बहन, उम्रदराज़ होने पर कैसा दिखेगी,यह सोचती है,कैसे वह ताउम्र अपने बचपन के सरल और स्नेहभरे ह्रदय को जीवित रख सकेगी ; और कैसे वह अपने नन्हे-मुन्हे बच्चों को ,कई अनोखी कथाओं से ,सम्भवत: प्राचीन समय के आश्चर्य लोक की स्वप्न कथाओं से,उनकी आँखों को प्रज्ज्वलित और जिज्ञासु बनाने में सफल हो सकेगी ; और कैसे उन बच्चों के छोटे मोटे दु:खों को महसूस करेगी,और कैसे उनकी छोटी-मोटी खुशियों में ----अपने बचपन को याद करते हुए, गर्मी की छुट्टियों के सुखमय दिनों को याद करते हुए--- आनन्द प्राप्त कर सकेगी। " [12] कैरोल का आरम्भ और अंत एलिस के आश्चर्यलोक को एक बिल्कुल दूसरे परिप्रेक्ष्य के आलोक से भासमान कर देता है --- स्मृति के मायावी ताने बाने से बुने गये बचपन के स्वप्न और उसे जीवित और कायम न रख पाने की आशंका के बीच झिलमिलाती हुई यह कथा सिर्फ बच्चों की न होकर बच्चों के बारे में भी हो जाती है

;जेम्स किनकेड ने लिखा है ,एलिस मानवीय निर्बोधता से जुड़े आनन्द एवं खतरे के साथ ही साथ क्रूर अहंवाद एवं क्रूर असंवेदनशीलता (जिसे अक्सर अबोधता मान लिया जाता है) की भी प्रतिनिधित्व करती जान पड़ती है।[13]यहाँ यह जानना दिलचस्प होगा कि शमशेर के अनुवाद में यह दोनों ही अंश ----आरम्भ और अंत के ---गायब हैं---क्या इसका यह कारण बताया जा सकता है कि वे आश्चर्यलोक में एलिस को शुद्ध बच्चों की कथा बनाना चाहते थे---उसके दूसरे सारे आयामों की अनदेखी करते हुए।शमशेर के अनुवाद में इसके पर्याप्त संकेत हैं ---मूल रचना में जब कैटरपिलर एलिस से पूछता है who are you? और जब वह जवाब देती है : *I hardly know, sir, just at present –at least I know who I was when I got up this morning, but I think I must have been changed several times since then*.[14] तब यह स्पष्ट हो जाता है कि यह संवाद सिर्फ एलिस की स्थिति- विशेष की न होकर मनुष्य-मात्र की अस्मिता को परिभाषित करने की समस्या पर भी है और यह बात तब कुछ और स्पष्ट हो जाता है जब कैटरपीलर एलिस की बात समझने में अपनी असमर्थता जताते हुए उसे और स्पष्ट करने के लिए कहता है;इसपर एलिस का उत्तर है: I am afraid *I can not put it more clearly. Alice replied, very politely, for I can not understand it myself, to begin with; and being so many different sizes in a day is very confusing.* [15] सम्वाद के लहजे और सन्दर्भ से स्पष्ट हो जाता है कि पल-पल परिवर्तन के कारण उत्पन्न होने वाले इस उलझन का कारण कर्ता का महज़ शारीरिक आकार-परिवर्तन नहीं है लेकिन अनुवाद में सम्भवत: यही आभास होता है:"क्षमा कीजिएगा,मैं अपनी बात को साफ ढ़ंग से कह नहीं पा रही हूँ ।मेरी खुद कुछ समझ में नहीं आ रहा है।सुबह से मैं इतनी बार छोटी हो चुकी हूँ कि सब गड़बड़ हो गया है ।" [16] आगे एलिस कैटरपिटर के सामने एक और बुनियादी समस्या की ओर ध्यान खींचती है जिसका सम्बन्ध स्मृति की सृजनात्मकता से है,वह कहती है *'well,I have tried to say "How doth the little busy bee " but it all came different!"* [17] यह जो कहने में बात का बदल जाना है,वह भाषा और भाव के द्वैत को स्थापित तो करता ही है इसके अतिरिक्त कथा में पैरोडी के लिए एक आधारभूमि का भी निर्माण करता है। विक्टोरियन इंगलैंड के स्कूलों में राबर्ट साउदे(1774-1843) की कविता **द ओल्ड मैंस कम्फर्ट** प्रदिष्ट (प्रिस्क्राइब) थी और सभी

विक्टोरियन बच्चों से यह अपेक्षा की जाती थी कि इसे कण्ठस्थ करें। कैटरपिलर जब एलिस को यह कविता सुनाने को कहता है तब एलिस उसे यूँ सुनाती है

'दादा विलियम,दादा विलियम,तोंद तुम्हारी गोल-मटोल;
रहे-सहे सब बाल उड़े-से; उस पर है यह कैसी गत---
जो सर के बल उलटे होकर खड़े हुए हो देही तोल!
अच्छी-भली बुढ़ौती में भी है यह कैसी उलटी मत?[]

दादा विलियम बोले --- ' बेटा जब कसरती जवानी थी,
एक यही भय था कि पिचककर बुद्धि न जाए कहीं निकल!
ठटरी अब तो खाली मेरी,और खोपड़ी भी गंजी;
इसीलिए निश्चिंत खड़ा रहता हूँ घंटों सर के बल।' [18]

यहाँ मूल साउदे की कविता के दो बन्द तथा एलिस इन वंडरलैंड में उसी अंश की पैरोडी के समक्ष इसको रखकर देखें ; साउदे की कविता है:

You are old, Father William, the young man cried,
The few locks that are left you are grey,
You are hale, Father William, a hearty old man,
Now tell me the reason, I pray.

In the days of my youth, Father William replied,
I remembered that youth would fly fast,
And abused not my health and my vigour at first,
That I never might need them at last. [19]

(The Old Man's Comforts, 1799)

और लुई कैरोल की पैरोडी यूँ है:

'You are old, Father William, the young man said,

'And your hair has become very white;
And yet you incessantly stand on your head---
Do you think, at your age, it is right?

'In my youth Father William replied to his son,
'I feared it might injure the brain;
But, now that Im perfectly sure I have none,
Why, I do it again and again [20]

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि साउदे की कविता को जाने बगैर क्या कोई पाठक पैरोडी के इस अंश का मजा ले सकता है? और अनुवादक के सामने क्या रास्ता है,जिसके पाठक के समक्ष न साउदे की कविता है न लुई कैरोल की,वह मूल स्रोत पाठ की रक्षा कैसे करे?एक तो रास्ता यह हो सकता है कि वह लक्ष्य-भाषा में पैरोडी रचने के लिए,जिसकी पैरोडी की जानी है पहले उसको रचे; यानी पहले साउदे की कविता का लक्ष्य भाषा में समतुल्य ढुँढे फिर स्रोत-पाठ का अनुवाद करे ----जाहिर है कि यह बहुत ही मुश्किल और जोखिम-भरा काम है ; अव्वल तो लक्ष्य-भाषा में पैरोडी का आधार स्रोत का मिलना ही मुश्किल होगा (प्रस्तुत सन्दर्भ में साउदे की कविता से मिलता-जुलता हिन्दी में कोई कविता)और अगर मिल भी जाय तो फिर उसके पैरोडी बनाने में स्रोत —पाठ (एलिस इन वंडलैंड) से उसकी दूरी,विचलन की मात्रा, इतनी अधिक होगी कि अनुवाद न कहकर उसे रूपांतरण की श्रेणी में रखना होगा ।खैर शमशेर यह जोखिम ही नहीं उठाते और पैरोडी रचने के बदले बच्चों को हँसाने के हल्के-फुलके नुस्खे का सहारा लेते दिखाई पड़ते हैं ,जैसे फादर विलियम की गोल-मटोल तोंद की उनकी कल्पना ,जो न तो साउदे के यहाँ है और न कैरोल की रचना में है ।

अनुवाद की मुख्यत: दो विधियाँ रही हैं :जर्मन दार्शनिक फ्रीडरिख श्लायरमाखर के शब्द उधार लेकर कहें तो एक विधि यह है जिसमें पाठक को लेखक के करीब ले जाया जाता

है जबकि दूसरे में लेखक को पाठक के पास पहुँचाने का प्रयत्न प्रमुख होता है ।[21]कहने का तात्पर्य यह है कि अनुवादक के पास दो विकल्प होते हैं,या तो वह रचना की भाषिक और सांस्कृतिक भिन्नता को अनुवाद में बरकरार रखते हुए पाठक को रचना के विदेशीपन से दो -चार होने का अवसर प्रदान करें या फिर उसे लक्ष्य भाषा के सांस्कृतिक परिवेश के अनुसार परिवर्तित कर दे यानी उसका देशीकरण कर दे ।आरम्भ से ही इन दोनों ही विधियों का प्रचलन रहा है और यही कारण है कि प्राय: हर भाषा में अनुवाद को लेकर देशीकरण बनाम विदेशीकरण का विवाद होता देखा गया है ।अंग्रेजी में मैथ्यू आर्नल्ड अंग्रेज होमर चाहते हैं जबकि फ्रांसिस न्यूमेन, होमर के विदेशीपन को बनाये रखने को आवश्यक समझते हैं ।शेक्सपियर का *मर्चेंट आफ वेनिस* हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा *दुर्लभ बन्धु या वंशपुर का महाजन* में बदल जाता है (जिसमें यहूदी शाइलाक जैन शैलाक्ष में परिवर्तित कर दिया गया है)जबकि भारतेन्दु के ही समकालीन आर्या नामक व्यक्ति इस नाटक का अनुवाद *वेनिस नगर का व्यापारी* करना अधिक उपयुक्त समझता है ।वैसे हिन्दी अनुवाद में देशीकरण को ज्यादा तवज्जो मिलता रहा है और जिसका प्रमाण यह है कि यहाँ किसी अच्छे अनुवाद को मानो हिन्दी की कोई मूल रचना हो कहकर प्रशंसित करने की प्रणाली विकसित हुई लेकिन क्या यह इसी का दुष्परिणाम नहीं है कि हम अपने आदर्श अनुवादों में निर्मल वर्मा,राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश की शैली से तो परिचित होते हैं लेकिन इर्शी फ्रीड,यान ओत्वेनाशेक,कारेल चापेक,चेखव,तुर्गनिव,हेनरी जेम्स जैसे रचनाकारों की लेखन-शैली से नावाकिफ ही रह जाते हैं ।प्रसेनजित गुप्ता का यह कहना सही नहीं है कि निर्मल वर्मा के अनुवाद विदेशीकरण को तरजीह देते हैं ।[22] इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि तमाम कमजोरियों के बावजूद प्रगति प्रकाशन मास्को के अनुवादकों में रूसी महारथियों के रचना-कौशल की अनन्यता का अनुभव हमें अपने आदर्श अनुवादों से अपेक्षाकृत कहीं अधिक होता है ।क्या इसका कारण यह है कि इन अनुवादों में हिन्दीकरण (देशीकरण)के बजाय रूसीकरण (विदेशीकरण)पर जोर दिया गया है; या कहें कि हिन्दी का रूसीकरण किया गया है। अनुवाद के सिद्धांतकार ऐसा मानते हैं कि वह अनुवाद जिसमें विदेशीकरण पर बल दिया जाता है ----स्रोत-भाषा के अनोखेपन से प्रभावित होने के लिए लक्ष्य-भाषा को जिसमें खुला,अरक्षित छोड़ दिया जाता है, किसी भाषा के विकास के लिए अधिक स्फूर्तिप्रद होता है।[23]

संसार की प्रसिद्ध कहानियाँ(1938), पृथ्वी और आकाश(1944), षडयंत्र(1946), सरशार के उर्दू उपन्यास (कामिनी, हुश्शू, पी कहाँ: 1948), उसी दौर की गद्य-रचनाएँ हैं जब शमशेर "नया साहित्य" , "हंस", "भारत"," "चित्रपट"," "रूपाभ" जैसी पत्रिकाओं में लेख(जो बाद में चलकर "दोआब" में संकलित हुई), डायरी और "प्लाट का मोर्चा" की कहानियाँ (रचना-काल 1940'50)लिख रहे थे ।यह देखना दिलचस्प होगा कि शमशेर के अनूदित ग्रंथों की गद्य-शैली और उनके मौलिक लेखों और डायरी की गद्य-शैली में क्या कोई फर्क है । 27 मई 40 की लिखी उनकी डायरी है:

"रात्रि के आसमान का गहरा नील,जिसको मेरा अंतर मानो भली प्रकार जानता है और पसन्द करता है ।

"सन्ध्या से कुछ पहले: वह स्थिर धूमिल विशाल सरोवर --- यानी यह आकाश ---जिसके तट पर हम खड़े हैं, बहुत दूर ।

"बाज़-बाज़ जानवर कब सोते हैं---या सोते भी हैं; पता नहीं ।जैसे,थान पर बन्धे हुए डंगर,या घोड़े ।कितने घंटे की नींद,अनिवार्य रूप कब,इन्हें जरूरी होती है?"[24]

इसके बरक्स *एक सुबह* का यह स्केच :

"इस समय सरोवर में सूर्य के प्रतिबिम्ब की वह तेजोमय असिधार बीच से दो होकर,बिल्कुल दोनों किनारों से जा लगी है; और जल का प्रशांत नील शरीर अविछिन्न — स्वच्छन्द रूप से फिर आर-पार फैल गया है ।क्योंकि बादल के और भी टुकड़े इधर-उधर से मिलकर,जमा होकर,रूई के चौड़े- चौड़े गालों की तरह --- कि जिन्हें कई-एक तरफ फेंक दिया हो, ताकि धुनाधुना कर,कत-बुनकर,वह फिर कहीं कभी काम आ जाय--- वे बादल के टुकड़े, अब अधिक पास-पास मिलकर फैल गये हैं ।...

"किंतु सूर्य के मुख पर से फिर यह आवरण धीरे-धीरे हट रहा है ।और फिर...

"वह तलवार की धार सहसा और भी चौड़ी हो,सब ओर जल की लहरियों को और अधिक कँपाती हुई पुन: सरोवर के वक्ष पर उगल पड़ी है,वह मोतियों में चांदी की पिघलती,बहती हुई तलवार... " [25]

और इसके समानांतर *पृथ्वी और आकाश* का यह अंश देखें:

"वह ठिठक गयी, और जिस तरफ को कुर्ट हाथ से दिखा रहा था, उधर देखने लगी। दूर,जहाँ पृथ्वी का नीलापन आकाश के हिमाभ वर्ण में खो जाता था ।एक इन्द्रधनुष झिलमिल कर रहा था ।रंगों का एक सुलगता हुआ स्तम्भ,जो उपर उठता अस्पष्ट होकर अनंत दूरियों में लीन हो गया था ।हरे,नीले,बैंगनी और गुलाबी रंग;एक पारदर्शी मरकत आलोक; शुभ्र और कोमल,जैसे रंग-बिरंगी पशम ।

"इन्द्रधनुष! आश्चर्य-चकित होकर कुर्ट बोल उठा । जाड़ों की ऋतु में इन्द्रधनुष...क्या ऐसी घटनाएँ भी तुम्हारे देश में होती हैं?

"पुस्या ने एक क्षण सोचा ।

"नहीं,मैं तो नहीं समझती कि होती हैं । कम से कम मैंने तो ऐसी पहले कभी कोई नहीं देखी ।

" कुर्ट अब भी खड़ा था वहीं ।उसकी आँखें रंगों के उस सुलगते स्तम्भ पर जो पृथ्वी और आकाश के उस सुलगते स्तम्भ पर जो पृथ्वी और आकाश के छोर मिला रहा था,टिकी हुई थीं ।

"आओ भी,ठण्ड से मेरे तो पैर अकड़ गये...

"लोग कहते हैं कि इन्द्रधनुष एक अच्छा शकुन होता है...

"आखिरकार पुस्या का सारा धैर्य टूट गया। वह बोल उठी: आखिर तो इन्द्रधनुष,इन्द्रधनुष ही है और उसकी आस्तीन खींचने लगी ।

"उन कुछ मिनटों में ही वे स्तम्भ उँचे हो गये थे,और दोनों ओर से घूमकर मिल गये थे ।अब इन्द्रधनुष पृथ्वी के उपर एक विजय-द्वार की तरह फैला हुआ था ।उसके बैंगनी और हरे और गुलाब के रेंज सुनहरी-सी आभा में झिलमिला रहे थे ।आकाश शीशे के एक महान गुम्बद के समान पृथ्वी को ढँके हुए था । मानो वह शीशे का कोई विशाल घण्टा हो ।चौराहे पर बन्दूकें लिये हुए सिपाही,सिर पीछे को मोड़े हुए इस असाधारण दृश्य की ओर एकटक देख रहे थे ।"[26]

गद्य-शैली के पारखी इन तीनों गद्यांशों की एकरूप शैली को सहज ही पहचान पायेंगे ---- शब्द-चयन से लेकर अभिव्यंजना की भंगिमाओं तक रचना के एकसमान रेजिस्टर होने

के पर्याप्त प्रमाण मौजूद हैं; इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि शमशेर रचना विशेष की शैली को लक्ष्य-भाषा में पकड़ने के बजाय अपनी शैली में उसे ढालना पसन्द करते हैं। यही कारण है कि शमशेर ने इस उपन्यास का नाम मूल का अनुवाद इन्द्रधनुष न रखकर पृथ्वी और आकाश रखना उचित समझते हैं । अनुवादक के लिए इन्द्रधनुष का महत्व उसका स्वयं में न होकर उसके उस तत्त्व के कारण है *जो पृथ्वी और आकाश के छोर मिला रहा था* । यहाँ शमशेर के अनूदित गद्य की एक विशेषता यह दिखाई पड़ती है कि वे मूल की आत्मा को,उसकी शैली को यूँ पकड़ना चाहते हैं कि उसमें उनकी,अनुवादक की व्याख्या भी शामिल हो जाती है ।

कथेतर गद्य में शमशेर के दो अनुवाद हैं ---**उर्दू साहित्य का इतिहास** और **षडयंत्र** ।उर्दू साहित्य का इतिहास एजाज़ साहब के **मुख्तसीर तारीख-ए-अदब-ए-उर्दू** का अनुवाद है । एजाज़ साहब **निवेदन** में कहते हैं "...यह पुस्तक दरअस्ल उर्दू लिपि में लिखी गई थी मगर अब उसे हिन्दी में भी पेश करने की हिम्मत इसलिए की जा रही है कि हिन्दी और उर्दू एक भाषा के दो रूप माने जाते हैं और इसलिए उर्दू की तमाम खूबियों खराबियों से हिन्दी-प्रेमी परिचित होना चाहते हैं ।कई विश्वविद्यालयों के हिन्दी पाठ्यक्रम में उर्दू भाषा का इतिहास अनिवार्य विषय है ।लेकिन छात्रों को इस सिलसिले में बड़ी दिक्कत होती है ।नागरी लिपि में उर्दू भाषा के बहुत कम इतिहास मिलते हैं ।जो मिलते भी हैं,वे आमतौर से इतने विस्तृत होते हैं कि पाठक घबड़ा जाता है ।मुझे उम्मीद है कि राजकमल प्रकाशन की यह कोशिश बड़ी हद तक उस कमी को पूरा कर सकेगी ।

"हिन्दी तर्जुमे का श्रेय मेरे प्रिय शिष्य श्री शमशेरबहादुर सिंह को है, जिनका उर्दू और हिन्दी पर समान अधिकार है ।" [27]

पहले अंश में उर्दू साहित्य के इतिहास का नागरी लिपि में न होने की बात कही गई है लेकिन दूसरे अंश में हिन्दी तर्जुमे का श्रेय श्री शमशेरबहादुर सिंह को दिया गया है,*जिनका उर्दू और हिन्दी पर समान अधिकार है* ।यहाँ यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि उर्दू या हिन्दी से तात्पर्य उर्दू की लिपि (फारसी लिपि)या हिन्दी लिपि(नागरी लिपि) से है या हिन्दी उर्दू भाषा व साहित्य से है ।अगर यह तर्जुमा है तब यह महज लिप्यंतरण नहीं है और अगर

लिप्यंतरण है तो तर्जुमा नहीं लेकिन हिन्दी-उर्दू के अनुवादों में अक्सर यह भ्रम बना रहता है ।किताब का आरम्भिक पैरा है:

"दो या कई ज़बानों के मेल-जोल से कभी एक नई ज़बान पैदा हो जाती है मगर दो-चार साल में नहीं बल्कि सदियों में ,उर्दू ज़बान भी इस क़ायदे से मुस्तस्ना नहीं,अरबी फारसी और हिन्दुस्तानी ज़बानों के बाहरी इख़्तलात से इसका वजूद जहुर में आया । लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि ये इख़्तलात ज़बानों की बुनियादी शक्ल बदल देता है बल्कि होता यह है कि एक जबान बुनियाद बन जाती है और दूसरी इसमें इज़ाफा करती हैं ।हिन्दुस्तानी के सिलसिले में हिन्दुस्तान की ज़बान ने बुनियाद का काम दिया ।और फारसी अरबी अल्फाज़ और आवाज़ों ने इसका दामन वसीअ किया ।" [28]

हिन्दी-अनुवाद में पुस्तक के आरम्भ का शीर्षक **उर्दू भाषा का जन्म** दिया गया है,जिसका आरम्भ यूँ होता है:

"दो या कई ज़बानों के मेल-जोल से कभी-कभी एक नयी ज़बान पैदा हो जाती है ।मगर दो-चार साल में नहीं,बल्कि सदियों में ।उर्दू ज़बान भी इस क़ायदे से बाहर नहीं ।अरबी,फारसी और हिन्दुस्तानी ज़बानों के आपस में मिलने से यह पैदा हुई ।

"हिन्दुस्तान में आर्य जाति लगभग 1500 वर्ष ई.पू. आयी ।यहाँ द्रविड़ जाति फैली हुई थी, जो उससे बहुत पहले हिन्दुस्तान आ चुकी थी । आर्यों ने द्रविड़ों को ढकेल कर पीछे कर दिया,और उनको जीत कर 1000 ई.पू. से 600 ई.पू.तक उत्तरी हिन्दुस्तान में पंजाब से बंगाल तक फैल गये ।हिन्दुस्तान में पहले ही से अलग-अलग इलाकों में अलग-अलग बोलियाँ थीं । आर्य लोग जब तक एक इलाके की हद में रहे,उनकी ज़बान अपनी जगह कायम रही ; लेकिन जैसे-जैसे वह फैलते गये,ज़बान में फर्क आता गया ।कुछ आबो-हवा की वजह से, कुछ दूसरी ज़बानों के मेल-जोल से,बोल-चाल में और लफ़्ज़ों में हेर-फेर होता गया; यहाँ तक कि उनकी ज़बान की वह हैसियत बहुत कम रह गई जो शुरू-शुरु में थी । 600 ई.पू.तक कोशिश हुई,कि ज़बान को एक ढाँचे में लाकर एक हैसियत दे दी जाय ।इस कोशिश को कामयाब बनाने के लिए उसूल यह रखा गया कि मुक़ामी फ़र्क़ों को अलग रख कर सिर्फ ऐसे लफ़्ज़ों को टकसाली माना जाय,जो सब जगह चलते हों ।इस उसूल से बँधकर लोग एक ख़ास टकसाली ज़बान इस्तेमाल करने लगे; और यह ज़बान पाक-साफ़ यानी *शुद्ध* होकर संस्कृत कहलायी ।"[29]

आप पायँगे कि यहाँ कुछ पंक्तियों को न सिर्फ सम्पादित कर दिया गया है बल्कि ज़बान,क़ायदा,लफ़्ज़,हैसियत,उसूल,मुक़ामी फ़र्क़ जैसे प्रचलित शब्दों को सिर्फ लिप्यंतरित कर दिया गया है ।अनुवादक ने किताब में उद्धृत शेरों के कठिन अरबी-फारसी के

शब्द अनूदित किए हैं और कई जगहों पर अरबी-फारसी के ख़ासपसन्द शब्दों को कोष्ठकों में ही अनूदित कर दिया गया है; जैसे मज़हर जानेजानाँ के बारे में बताते हुए इतिहासकार कहता है: "मिर्जा ज़ानेजानाँ ने तीस बरस की उम्र तक मदरसों और ख़ानकाहों (आश्रमों) की झाड़ू लगायी और पहुँचे हुए लोगों की सेवा की ।"[30] यहाँ अनुवादक ने खानकाहों का अनुवाद कोष्ठक में ही आश्रम कर दिया है लेकिन कई बार तारांकित कर पाद-टिप्पणी में व्याख्यायित भी किया गया है जैसे उपर उद्धृत वाक्य के ही आगे की पंक्ति है: "आलिमोंs से **हदीस** और **फ़िक:** का ज्ञान लिया।...सन1781 ई. में(10 मोहर्रम को)एक शख़्स के हाथ से क़त्ल हुए।सौदा ने **तारीख़** कही: ... "[31]जिसकी व्याख्या पाद-टिप्पणी में यूँ की गई है: **हदीस**:पवित्र ग्रंथ,जिसमें हजरत मोहम्मद की फ़रमायी हुई बातें हैं ।**फ़िक:** इस्लाम के नीति-आचार का ग्रंथ । **तारीख़** उस पद को कहते हैं जिसके अक्षर को जोड़ने से कोई सन निकलता हो ।(हाय जान-जानाँ मज़लूम के फ़ारसी अक्षरों को जोड़ने से हिजरी सन 1195 निकलती है ।)"[32]

इस अनूदित पुस्तक के अध्यायों का शीर्षक ही यह बता देता है कि यह अनुवाद और लिप्यंतरण का मिला जुला रूप है (भाग एक,अध्याय एक --- कविता:दकनी दौर,अध्याय दो: आरज़ू और यकरंग का ज़माना,अध्याय दस:नया दौर ,अध्याय ग्यारह: मौजूदा दौर ; भाग दो अध्याय एक: गद्य: गद्य का इतिहास,अध्याय दो: फोर्ट विलियम कालेज के बाहर,अध्याय तीन:गद्य की तरक्की, अध्याय चार: पत्रकारिता और सामयिक निबन्ध,अध्याय पाँच :आलोचना,अध्याय छह :उपन्यास,अध्याय सात: कहानी,अध्याय आठ: हास्यरस की कहानियाँ);अनुवादक ने उर्दू के सिर्फ उन शब्दों का ही अनुवाद करना उचित समझा जिसे समझने में उनके अनुसार हिन्दी पाठक को दिक्कत हो सकती है,जैसे दौरे-जदीद (नया दौर),दौरे-हाजिर (मौजूदा दौर),दौर की खुसिसयात (गद्य की तरक्की),मक़ालातो-सहाफत (पत्रकारिता और सामयिक निबन्ध) ,तनकीद(आलोचना),तंजो-मज़ाह (हास्य-रस की कहानियाँ) वरना अधिकतर शब्दों को लिप्यंतरित ही किया गया है और उर्दू के लहज़े को ज्यों का त्यों बरकरार रखा गया है ।

शमशेर ने लुई अरागाँ (1897-1982)की कविता का अनुवाद अंग्रेजी से किया ; शमशेर के काव्यानुवाद का शीर्षक है,**गुलेलाला और गुलाब के फूल,**कविता यूँ है :

फ्रांस के फूलों के बाग मुझे कभी न भूलेंगे

बिछे हुए रंगीन पत्ते उन शताब्दियों के,जो बीत गये पर भी बहुत कुछ है
न ही शाम के धुँधलके में फूलों की वह अस्त-व्यस्तता,वह श्लेष पूर्ण हिंस्र मौन

हम जिधर-जिधर से होकर गये,हमारे रास्ते गुलाब ही गुलाब से भरे थे

वे फूल जो मुँह चिढ़ा रहे थे उन फौजियों का

जो भय और आतंक के मानो पर लगाकर उड़े जा रहे थे

आतंक जो हवा की तरह उन्हें पीछे से भगा रहा था
और वे खिलखिला रहे थे पागलों सी उन पुश-बाइकों पर और

तोपों के मुँह पर और ढचर-मचर क़ाफिलों पर शरणार्थियों के

लेकिन एक बात जो मेरी समझ में नहीं आती, यह है कि ---यह तूफान

यादों का,हमेशा ही,उसी एक केन्द्र-बिन्दु पर आकर रुक जाता है,वहीं
साईं मार्थे में...कोई जनरल है...एक काला-काला -सा धब्बा

नार्मन युगों से बसा-चला आया छोटा-सा एक नगला ,
वहीं पर जंगल की हद खत्म होती है ।

सब शांत है यहाँ...दुश्मन का पड़ाव रात में विश्राम कर रहा है

और पेरिस ने हथियार डाल दिये हैं,यही तो अभी हमने सुना

मैं कभी न भूलूँगा वे गुलेलाला,वे गुलाब
वे दो प्यार जिनका लुट जाना हमने सहा है ।

वे पहले दिन के उपहार के गुलदस्ते,गुलेलाला के,फ्लैंडर्स के लाले
छायाओं-जैसे नाजुक गाल,जिन पर मौत के हाथ ने जैसे पौडर मला हो
और वो तुम,हमारी पराजय की भेंट,नाजुक-नाजुक गुलाब के फूल
के गुलदस्तो,जिनसे रंग का चटकीलापन टपक रहा है
दूर युगों के कहीं,युद्ध और संघर्ष का,अतीत आँजू के गुलाब के फूलों का ।

33

इस अनुवाद को मूल फ्रांसिसी से हिन्दी में किये अनुवाद के सामने रख कर देखें तो कई बातें स्पष्ट होंगी । मूल फ्रांसिसी से हेमंत जोशी के किये अनुवाद में कविता का शीर्षक है: **लिली और गुलाब**,और पूरी कविता यूँ है :

ओ फूलों के खिलने के मौसम ओ मौसम रूपान्तरण के
बिन बदली का मई और जून कंटीले
नहीं भूल पाउँगा कभी वह फूल लिली और गुलाब के
न जिन्हें वसन्त आगोश में अपनी संभाले

नहीं भूलूँगा कभी वह त्रासद भ्रम
शव, भीड़, धूप और क्रंदन
स्नेहवश जो गाड़ियाँ बख़्तरबंद दे गया बेल्ज़ियम
काँपती हवा और राह वह जिसमें हर तरफ़ भंवरों का गुंजन
विवेकहीन विजय जो आती है लड़ाई के बाद
रक्त जो पूर्वाभास है किरमिजि रंग में चुम्बन का
और सब जो बुर्ज में खड़े मरना चाहते है एक-दूसरे के बाद
लिली से घिरे हुए बदरंग लोगों का

नहीं भूलूँगा मैं कभी फ्राँस के बागीचों को
बिसरे हुए युगों के दागों का सैलाब
न शाम की मुसीबत न ख़ामोशी के रहस्य को
तय की हुई राह भर गुलाब ही गुलाब
संत्रास की हवाओं में फूलों का झूठ
सैनिक जो गुजरते हैं भय के पंखों पर
उन्मादी साइकिल सवारों को, विडम्बना भरी तोपों को
नकली डेरेवालों का दयनीय साजोसामान

पर मैं नहीं जानता क्यों यह अशांत छवियां
मुझे लौटा लाती हैं उसी ठहराव में
सैंत-मार्त में एक जनरल काले पत्तों सा बना
जंगल के किनारे एक विला नोरमाँद
सब ख़ामोश है दुश्मन छाया में सुस्ता रहा
हमें बताया गया शाम को पेरिस दुश्मन ने जीत लिया

मैं नहीं भूलूँगा कभी लिली और गुलाब
और न वह दो प्रेम जो हमसे बिछड़ गए

पहले दिन का गुलदस्ता लिली लिली फ्लांद्र की
छाया की मिठास जहाँ मृत गालों का करते हैं श्रृंगार
और तुम्हारे वापसी के गुलदस्ते के गुलाब कोमल
आगज़नी का रंग दूर और आँजू के गुलाब। [34]

फ्रांसिसी भाषा जाने बगैर यह कहना मुश्किल है कि इन दोनों अनुवादों में मूल के करीब कौन अधिक है लेकिन काव्य - पाठक के लिए यह पहचानना मुश्किल नहीं होगा कि

काव्यत्व कहाँ अधिक है?दोनों अनुवाद एक-दूसरे से इतने भिन्न हैं कि कवि के दो अलग-अलग मसौदों की तरह जान पड़ते हैं --- आखिर *" शाम के धुँधलके में फूलों की वह अस्त-व्यस्तता,वह श्लेष पूर्ण हिंस्र मौन"और "नहीं भूलूँगा कभी वह त्रासद भ्रम"* के बीच किस प्रकार की समानता की कल्पना की जा सकती है; इसी प्रकार *" साईं मार्थे में...कोई जनरल है...एक काला-काला -सा धब्बा / नार्मन युगों से बसा-चला आया छोटा-सा एक नगला, / वहीं पर जंगल की हद खत्म होती है। "* और*"सैंत-मार्त में एक जनरल काले पत्तों सा बना / जंगल के किनारे एक विला नोरमाँद"दो भिन्न शब्दार्थ हैं और "छायाओं-जैसे नाजुक गाल,जिन पर मौत के हाथ ने जैसे पौडर मला हो"* की सम्वेदना *"छाया की मिठास जहाँ मृत गालों का करते हैं श्रृंगार"* से भिन्न धरातल पर अवस्थित हैं -----कविता सिर्फ शब्दार्थ नहीं है इसका बोध अनुवाद के क्षेत्र में ही सर्वाधिक होता है ।बाशो (1644 — 1694),के एक प्रसिद्ध हायकू का अनुवाद शमशेर यूँ करते हैं :

एक पुराना तालाब
और उछलते मेढ़क की आवाज़
पानी के भीतर (बीच)? [35]

अज्ञेय ने इसी हायकू का अनुवाद इस प्रकार किया है:

ताल पुराना
कूदा दादुर
गुडुप । [36]

मूल जापानी में यह हायकू यूँ है :

furu ike ya
kawazu tobikomu
mizu no oto [1686]

और अंग्रेजी में इसे यूँ अनूदित किया गया है:

The old pond

A frog jumps in

Plop.[37]

मूल जापानी में आठ शब्द हैं और अंग्रेजी अनुवाद में भी आठ शब्द हैं लेकिन शमशेर के अनुवाद में बारह तथा अज्ञेय में पाँच ; हायकू की प्रकृति को देखते हुए,जो मितकथन और घनत्व की कला है,अनुवादक के रवैये और कौशल के बारे में पता चलता है ।यह भी विचारणीय है कि शमशेर ने कविताओं के अनुवाद बहुत ही कम किये ; इसका कारण सम्भवत: यह हो कि एक कवि होने के नाते उनको कविता के अनुवाद की असम्भाव्यता का अनुभव कुछ ज्यादा ही तीव्रता से हुआ हो।

शमशेर ने अपनी कुछ कविताओं का भी अनुवाद किया है,कुछ अँग्रेजी से हिन्दी में और कुछ हिन्दी से अँग्रेजी में ।उनकी डायरी में स्वयं की कई कविताओं के अँग्रेजी और हिन्दी प्रारूप मिलते हैं-----जिसमें दी गई तारीख से पता चलता है कि कौन किसका अनुवाद है ! **कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ मैं** संग्रह में छपी **रूप देवी** कविता के अंग्रेज़ी प्रारूप पर 2/ 10 / 55 तथा 4/ 10/ 55 तारीख पड़ी है। हिन्दी प्रारूप की तारीख 4/ 10/ 55 है ।स्पष्ट है कि कविता पहले अंग्रेज़ी में लिखी गयी थी और प्रकाशित कविता उसका अनुवाद है।डायरी में अँग्रेज़ी कविता कुछ यूँ दर्ज है[38]:

That Devi like stature
An owned
Softness
Of evening rapt
Dew---- brilliant, still, immortal.
A still portrait
Of night's
Rich breast
An ode
Fresh and most ancient like some
Constellation
Reality In the core
Of my own self.

कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ मैं में कविता का प्रकाशित रूप यह है:

रूप देवी
तुहिन कोमलता
समेटे
प्राण

सन्ध्या
चित्र
विभा-वैभव का
शांत

अमर
गीत
शुभ्रतम
आदिम

नक्षत्र
ओ महत्तम
मेरे स्वप्न की
सत्य सम्भावना [39]

इसी प्रकार **चुका भी हूँ मैं नहीं** काव्य-संग्रह में **एक नये कवि से** कविता का अँग्रेजी प्रारूप पहले लिखा गया --- To a New Poet:

O young Poet-Apollo of Action

Young Mind, swift and
Sure like an arrow:
A life dedicated to the
Meaning of Beauty.

Did I see some counterpart of
My own shy restless youth---
A very restless, very shy poet's
Youth in you just now
Across the ages---to renew
My spirit?
Or was that an early window---
Flash opened again
In your face for me to peer into…
Into the eyes of my love
Of my lost lost loves?

O do bear my youth…but o
Bear it with
Passion, honour and a
Secret religion
That only intimate poets follow. [40]

हिन्दी में यह कविता यूँ है:

देखता हूँ आज क्या मैं
फिर वही अपना शबाब!
वही तुम बेतावियों से भरे शर्मीले मिज़ाज़
बहुत शर्मीले बहुत बेताव!

किन जमानों का भला तुम आइना बन कर
आज मेरे सामने हो?
-----या अचानक कौंध कर खुल गयी
एक खिड़की बिजलियों की जहाँ
यह चेहरा तुम्हारा
सामने आ गया
लिए अपनी दृष्टि में वो झाँकियाँ
जो खो चुका हूँ
जमाना हुआ!

नये हो तुम।
आज के हो तुम।
फिर भी क्यों
तुम
लिए हुए मेरा शबाब आये...!
आओ
लिए हुए वही जोश आओ

वही गर्व
और वही आत्मा का धर्म जो कि
बहुत निजी कवियों का होता है ![41]

स्पष्ट ही ये दोनों ही कविताएँ काव्यानुवाद न होकर रूपांतरण हैं ---- कवि अपनी कविता से पूरी छूट ले सकता था;उसे स्रोत पाठ से निष्ठावान बने रहने की कोई बाध्यता भी नहीं थी ---यह कवि की एक ही सम्वेदना की दो भिन्न रूपाकृतियाँ कही जा सकती हैं ।जहाँ हिन्दी में **रूपदेवी** भव्य एवं उदात्त हैं(चित्र विभा-वैभव का) वहीं अँग्रेजी में उनका रूप श्रृंगारिक(इरोटिक:अ स्टिल पोट्रेट/ आफ नाइट्स/ रीच ब्रेस्ट) बन गया है।इसी प्रकार अँग्रेजी में *नया कवि* सकर्मक ---तीर की तरह निश्चित एवं सत्वर (अपोलो आफ एक्सन/ यंग माइंड,स्विफ्ट एंड /स्योर लाइक एन ऐरो) है जबकि हिन्दी में शर्मीला तथा बेताव:अँग्रेजी में नये कवि का जीवन, सौन्दर्य के अर्थ-सन्धान के प्रति समर्पित है जबकि हिन्दी में *नया कवि* ऐसा कोई दावा नहीं करता !आश्चर्य नहीं कि भुवनेश्वर की अँग्रेजी कविताओं का हिन्दी में जब शमशेर अनुवाद करते हैं तो उसे वे अनुवाद न कहकर रूपांतरण ही कहते हैं । क्या यह सच नहीं कि एक सफल काव्यानुवाद एक सफल रूपांतरण ही हो सकता है,कवि ने कहा भी है: *हम राख हैं जो आईने के मुँह पर मले हुए हैं/ क्या उसे माँजने के लिए?* [42] ।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1.मायकेल सेयर्स, अल्बर्ट यूगीन काह्न, **द ग्रेट कांसेपायरेसी**,लिटिल ब्राउन एंड कम्पनी,बोस्टन ,1946

2. नामवर सिंह(सं), **मलयज की डायरी**,राजकमल प्रकाशन,दिल्ली,प्रथम संस्करण,....,पृ.

3.रतननाथ सरशार,**कामिनी**,भूमिका,सरस्वती प्रेस,बनारस,1951,पृ.6

4.. □सरशार पर सर्वेंटीज़ का इतना गहरा प्रभाव था कि उन्होंने अपनी सभी बड़ी-बड़ी पुस्तकों में इस प्रभाव के चिह्न छोड़े हैं" एहतेशाम हुसैन, **उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास**,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,संस्करण 1984,पृ. 222

5.देखें,थोमस वेलबोर्न क्लार्क,**द नोवेल इन इंडिया**,यूनिवर्सिटी आफ केलिफोर्निया प्रेस,बर्कले,जार्ज एलेन एंड अनविन लिमिटेड,1970,पेज 110-117

6.रतननाथ सरशार,**हुश्शू**,सीमांत प्रकाशन,नई देहली,पेज 5-9

7.पंडित रतन नाथ सरशार,**पी कहाँ**,सीमांत प्रकाशन,नयी देहली,2006 ,पेज 5

8.रतननाथ सरशार,अनुवादक: शमशेर बहादुर सिंह,**पी कहाँ**,सरस्वती प्रेस,इलाहाबाद,प्रथम संस्करण,1981,पृ.5

9. लुई कैरोल,**आश्चर्य लोक में एलिस**, अनुवादक: शमशेर बहादुर सिंह,प्रथम राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली,1993,पृ.6

10.देखें,केरोलिन सेग्लर,(एडि.),**अल्टरनेटिव एलिसेस**,द यूनिवर्सिटी प्रेस आफ केंतुकी,1977

11.लुई कैरोल,**एलिस एड्वेंचर इन वंडलैंड एंड थ्रू द लुकिंग ग्लास**,ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,वर्ल्ड क्लैसिक्स पैपरबैक,1982,पेज 3

12.वही,पेज 110

13.जेम्स आर.केन्केड,**एलिस इन्वेजन आफ वंडरलैंड**,पी एम एल ए, 88,न.1,जनवरी 1973,पेज 92-99

14. लुई कैरोल,**एलिस एड्वेंचर इन वंडलैंड एंड थ्रू द लुकिंग ग्लास**,वही,पेज 40-41

15.वही,पेज 41

16. लुई कैरोल,**आश्चर्य लोक में एलिस**, अनुवादक: शमशेर बहादुर सिंह,वही,पृ.56-57

17. लुई कैरोल,**एलिस एड्वेंचर इन वंडलैंड एंड थ्रू द लुकिंग ग्लास**,वही,पेज 42

18. लुई कैरोल,**आश्चर्य लोक में एलिस**, अनुवादक: शमशेर बहादुर सिंह,वही,पृ.58-59

19.राबर्ट साउदे,**द पोयटिकल वर्क्स आफ राबर्ट साउदे**,ए एंड डबल्यू गेलिनेनी 1829,पेज 135 (गूगल इ-बुक)

20. लुई कैरोल,**एलिस एड्वेंचर इन वंडलैंड एंड थ्रू द लुकिंग ग्लास**,पेज 43

21. "अनुवाद के दो ही तरीके हैं ---या तो अनुवादक लेखक को जितना सम्भव है,शांतिपूर्वक उसे अपनी हाल पर छोड़ देता है और पाठक को उसके करीब लाने की कोशिश करता है ; या पाठक को जितना सम्भव है,शांतिपूर्वक उसे उसकी हाल पर छोड़कर लेखक को उसके करीब पहुँचाने की कोशिश करता है"मोना बेकर,(एडिटर),**रूतलेज इनसाइक्लोपीडिया आफ ट्रांसलेशन स्टडीज**,रूतलेज,लंडन ,रीप्रिंट 2004,पेज 242

22.देखें,प्रसेन्जित गुप्ता,**इण्डियन एरण्ट**,इंडियालाग पब्लिकेशन,दिल्ली,फर्स्ट पब्लिश्ड,2002

23.देखें,इत्तमार इवन-जौहर,**पेपर्स इन हिस्टोरिकल पोयटिक्स**,द पोर्टर इंस्टिट्यूट एंड सिम्योटिक्स,तेल अवीव यूनिवर्सिटी,तेल अवीव,1978

24,मलयज ,(सं)**शमशेर बहादुर सिंह की कुछ गद्य-रचनाएँ**,सम्भावना प्रकाशन,हापुड़,प्रथम संस्करण, 1989,पृ.287

25.वही,247

26. वांदा वास्लिवास्का,**पृथ्वी और आकाश**(मूल पोलिश,तेच्चा,अंग्रेजी शीर्षक: द रेनबो), , सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद , 1944

27. डाँ.एजाज़ हुसैन, **उर्दू साहित्य का इतिहास**, अनुवादक:शमशेर बहादुर सिंह,राजकमल प्रकाशन,दिल्ली, प्रथम संस्करण 1957,पेज 5-6

28. डाँ.एजाज़ हुसैन, **मुख्तसीर तारीख-ए-अदब-ए-उर्दू,** उर्दू किताब घर,देहली,तीसरा संस्करण 1964

29. डाँ.एजाज़ हुसैन, **उर्दू साहित्य का इतिहास**,वही,पेज 1

30.वही.पेज 49

31.वही

32.वही,पादटिप्पणी

33.रंजना अरगड़े (सं),**कुछ और गद्य-रचनाएँ**,राधाकृष्ण प्रकाशन,प्रथम संस्करण,1992,पृ.62

34. .http:/ / www.kavitakosh.org/ kk/ index.php?

35. गोविन्द रजनीश(सं), **हिन्दी काव्य पिछला दशक**,

36. अज्ञेय,**अरी ओ करूणा प्रभामय**,भारतीय ज्ञानपीठ ,दिल्ली,द्वितीय संस्करण 1980,पृ.108

37. एक अन्य अंग्रेजी अनुवाद में यह हायकू यूँ है*: An ancient pond/ A frog jumps in/ The splash of water*

http:/ / en.wikipedia.org/ wiki/ Matsuo_Basho

38.शमशेर की अप्रकाशित डायरी,रंजना अरगड़े के सौजन्य से प्राप्त सूचना के आधार पर

39.शमशेर बहादुर सिंह,**कहीं बहुत दूर से सून रहा हूँ**,राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली,प्रथम संस्करण 1995,पृ.19

40. शमशेर बहादुर सिंह,**चुका भी हूँ मैं नहीं,** राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली,द्वितीय संस्करण 1981,पृ.136

41.वही,पेज 29

42.शमशेर,इतने पास अपने,राजकमल प्रकाशन,दिल्ली,1980,पेज58